श्रीतत्त्वार्थसूत्र
पंचम अध्याय की सिद्धसेनीय टीका से उद्धृत
कुछ सूत्रों की टिप्पणी

DATE / / 11

सू. अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः 5-1॥

टी. (i) अजीव ⇒ न जीवाः = अजीवाः। यहाँ नञ् का अर्थ प्रतिषेध। प्रतिषेध 2 प्र.-

(a) प्रसज्य प्रतिषेध - जिस वाक्य में विधि की प्रधानता न हो और प्रतिषेध का प्राधान्य हो। eg. 'अत्र घटो न भवति' यहाँ भवति क्रियापद की प्रधानता नहीं है किंतु 'न' की प्रधानता है। इस प्रतिषेध से 'अभाव' अर्थ निकलता है। यह प्रतिषेध प्रसक्त का होता है। प्रसक्त यानि पहले जो वस्तु थी, वह अभी नहीं है। eg. उपरोक्त उदाहरण में पहले घट वहाँ था, किंतु अब नहीं है।

(b) पर्युदास - पर्युदास उससे विपरीत है। वह अर्थ से निर्दिष्ट और विधि वाक्य में तत्पर होता है। यह समास में होता है। यह 'अभाव' अर्थ नहीं किंतु सदृश अर्थ को ग्रहण करता है। eg. अजीव यानि जीव से अन्य सत् पदार्थ।

(ii) अजीव में प्रसज्य प्रतिषेध से असत् वस्तु नहीं लेना अर्थात् अजीव में द्रव्यता और वस्तुता का विपरीतपन नहीं है किन्तु मात्र चैतन्य गुण की विपरीतता है।

(iii) काय शब्द के 2 अर्थ हो सकते हैं -

(a) उपसमाधान = प्रदेशों और अवयवों का एक-दूसरे के साथ मर्यादा से रहना।

(b) काय शब्द उपमा अर्थ में है। काय यानि शरीर, अवयवों वाला।

(iv) काय शब्द से आपत्ति (उत्पाद-व्यय) रूप अर्थ - काय यानि समुदाय। समुदाय तभी होता है, जब प्रदेश होते हैं। इस प्रकार संपूर्ण द्रव्य को छोड़ प्रदेश कहने से पर्यायास्तिक नय होता है। प्रदेश के समुदाय का उत्पाद और व्यय होता है।

सू. द्रव्याणि जीवाश्च 5-2॥

टी. (i) गुण और पर्याय से द्रव्य पदार्थ अलग न होने पर भी भेद के विचार से भिन्नता का भास होता है।

(ii) द्रव्य के 6 विकार (पर्याय बदलने के 6 प्र.) -

(a) उत्पन्न होना - मिट्टी से घड़ा उत्पन्न होना।

(b) अस्ति - सत्ता रूप व्यापार रहित अवस्था।

DATE / /

(c) विपरिणाम- रूपान्तर करना।

(d) बढ़ना- जो परिणाम है, उसकी पुष्टि होना।

(e) क्षीण होना- जो परिणाम है, उसकी हीनता होना।

(f) नाश होना- प्रगट रूप का दबाना।

(iii) द्रव्यास्तिक नय से द्रव्य का निरूपण- द्रव्यता २ प्र. से जान सकते हैं-

(a) स्वनिमित्त- द्रव्य को उसके स्वधर्म-स्वरूप से पहचानना, जानना।

(b) परनिमित्त- द्रव्य को उसके गुण/पर्याय से जानना। ए.पुद्गल को रूप से जानना।

द्रव्य का लक्षण स्वभाव में अवस्थान है।

छद्मस्थ को मतिश्रुत ज्ञान से होने वाला द्रव्यता का ज्ञान परनिमित्त है, इसलिए ही सर्व द्रव्य विषयक है किंतु सर्व पर्याय विषयक नहीं है। केवली सभी द्रव्यों को स्वनिमित्त से जानते हैं।

सू. नित्यावस्थितान्यरूपाणि ५-३॥

हि.
(i) नित्य का लक्षण- जो कभी सत्ता से, स्वभाव से च्युत न हो, व्यय न हो।

(ii) अ.प्र. धर्मास्तिकाय अधर्म रूप से परिणमे, तो वह नित्य होगा क्योंकि सत्ता से च्युत नहीं होगा। तो क्या एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में परिणमित होता है। उ. सभी द्रव्य अवस्थित हैं।

अवस्थित का लक्षण- जो कभी ५ की संख्या को न छोड़े और स्वयं के स्वभाव को न छोड़े।

(iii) रूप का लक्षण- 'रूपं मूर्तिः' रूप मूर्ति है। मूर्ति यानि रूपादि का संस्थान-आकार रूप परिणाम।

अरूपी यानि जिसमें रूप न हो। यदि 'जो चक्षु से ग्रहण न हो' ऐसा अरूपी द्रव्य का लक्षण बनाए तो पुद्गल सूक्ष्म होने से अग्राह्य है अतः उसमें व्यभिचार आता। इसलिए 'रूप न हो' वह अरूपी का लक्षण।

(iv) धर्मादि द्रव्य में अरूपित्व की भजना- धर्मादि ५ द्रव्य अरूपी हैं किंतु औत्पत्तिक उत्पाद (नैमित्तिक) को लेकर ये भी रूपी कहे जाते हैं। जो घटाकाश, पटाकाशादि हैं, उनमें जब घटादि पदार्थ आए, तब उस घटाकाश का उत्पाद हुआ। इस निमित्त से वह

आकाश, धर्मादि द्रव्य रूपी भी कहे जाते हैं।

(v) 'मूर्त्यश्रियाश्च स्पर्शादय:' इस भाष्य का अर्थ है स्पर्शादि गुण मूर्ति के आश्रय वाले हैं। किन्तु 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा:' मूर्ति स्वयं गुण हैं; अत: वह स्पर्शादि का आश्रय कैसे है? उ. यहाँ द्रव्यास्तिक नय से 'मूर्ति' गुण को ही द्रव्य कहा है।

सू. रूपिण: पुद्गला: 5-4॥

टी. (i) 'रूपिण:' पद में मत्वर्थीय इन् प्रत्यय है। विग्रह- 'रूपं एषां एषु वा'। यहाँ षष्ठी और सप्तमी विभक्ति का प्रयोजन यह हैं कि द्रव्य-गुण का कथंचित् भेद दिखाने के लिए षष्ठी वि. है, कथंचित् अभेद के लिए सप्तमी वि. है।

सू. वर्तना परिणाम: ... 5-22॥

टी. (i) काल की सापेक्षता से द्रव्य है, पर्याय है।-

द्रव्यास्तिक नय से काल स्वतंत्र द्रव्य नहीं है। 5 द्रव्यों का परिणाम, पर्याय मात्र है। पर्यायास्तिक नय से वह स्वतंत्र द्रव्य है किंतु मात्र $2\frac{1}{2}$ द्वीपवर्ती। तथा वह ~~मात्र पर्याय~~ $2\frac{1}{2}$ द्वीप के बाहर उपचरित किया जाता है। यद्यपि $2\frac{1}{2}$ द्वीप के बाहर वर्तना-~~परिण~~ परिणामादि हैं किंतु वे काल के लिंग नहीं बनते।

(ii) परिणाम = द्रव्यत्व जाति का त्याग किए बिना, मूल स्वरूप कायम रखने पूर्वक परिस्पंद या अपरिस्पंद रूप प्रयोग से उत्पन्न द्रव्य का पर्याय।

(iii) 6 ऋतु के महिनों के संस्कृत और हिन्दी नाम

ऋतु	संस्कृत	हिन्दी
हेमंत	सह: - सहस्य	मागसर - पोष
शिशिर	तप: - तपस्य	महा - फागण
वसंत	मधु - माधव	चैत्र - वैशाख
ग्रीष्म	शुचि - शुक्र	जेठ - अषाढ
वर्षा	नभ: - नभस्य	श्रावण - भादरवा
शरद	इष - ऊर्ज	आसो - कार्तिक

DATE / /

सू. शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य... 5-24॥

टी. (i) शब्द का लक्षण- विवक्षा से अन्वय-व्यतिरेक से, प्रधान-गौण भाव से सामान्य और विशेष, ये उभय रूप अर्थ को कहने वाली, प्रत्येक अर्थ में नियत और संगत ऐसे वर्णादि विभाग वाली जो ध्वनि, वही शब्द है।

शब्द के लक्षण में 3 विशेषण-

(a) प्रत्येक अर्थ में नियत- अनादिकाल से चलती वृद्धपरंपरा से जो संकेत प्रसिद्ध है, उससे शब्द का प्रत्येक अर्थ के साथ नियतपन है। eg. 'कम्बुग्रीवादिमान् घटः' घट शब्द का 'कम्बुग्रीवादिमान्' अर्थ के साथ संकेत अनादिकाल से नियत है।

(b) संगत- जैसे शिबिका उठाने वाले पुरुषों का कार्य एक है और परस्पर अपेक्षा रखते हैं वैसे परस्पर अपेक्षा से शब्द का अभिधेय अर्थ के साथ एककार्य रूप संगतपन है। eg. घट शब्द में घ और ट, दोनों अक्षर परस्पर अपेक्षा रखने से एक पदार्थ के अभिधायक हैं।

(c) शब्द का विभाग- वर्ण, पद, वाक्यात्मक।

(ii) छाया पुद्गल का विकार है।

प्र. दर्पण के तल में मुखादि का प्रतिबिंब सामने ही क्यों परिणमता है, पराङ्मुख क्यों नहीं? उ. पुद्गलों का उस प्रकार का परिणाम-स्वभाव ही कारण है।

प्र. मुख से निकले पुद्गल कठिन दर्पण का प्रतिभेद कर पीछे कैसे जाते हैं? उ. इसे दृष्टांत से समझाते हैं- जैसे पत्थर में से पानी झरता है, उस प्रकार दर्पण से प्रतिबिंब के पुद्गल बाहर निकलते हैं, शरीर से पसीना बाहर निकलता है, वैसे दर्पण से पुद्गल बाहर निकलते हैं। अयोगोलक में अग्नि के पुद्गल प्रवेश करते हैं, वैसे मुख से निकले पुद्गल दर्पण में प्रवेश करते हैं।

सू. सङ्घातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते 5-26॥

टी. (i) बौद्ध- 2 परमाणु के संघात में बंध सर्वात्मना होता है या एक देश से होता है? यदि सर्वात्मना होता है तो पूरा जगत् एक ही आकाश प्रदेश में आ जाएगा, यदि देश से होता है तो परमाणु निरवयव नहीं रहेगा।

उत्तरपक्ष- परमाणु एक ही है। उसमें 'सर्व' शब्द का प्रयोग तू कैसे करता है।

सर्व शब्द तो अनेक वस्तु विषयक है। अर्थात् अनेक देश वाली वस्तु हो तो उसमें 'सर्व और एक देश' शब्द का प्रयोग किया जाता है। परमाणु तो निरवयव है, अत: तेरा यह प्रश्न ही गलत है।

हम तो इतना मात्र कहते हैं - परमाणु का परमाणु से बंध।

(ii) प्र. क्या एक परमाणु दूसरे के साथ संयोग होने पर उसमें देश से प्रवेश करता है?
उ. नहीं। दोनों परमाणु एक ही आकाश प्रदेश में स्वतंत्र अस्तित्व वाले रहते हैं किंतु एक परमाणु दूसरे परमाणु में नहीं घुसता है।

(iii) प्र. परमाणु का आकार क्या है? उ. परमाणु आकार रहित है। संस्थान-आकार सावयव द्रव्य का अवयवों द्वारा होता है किंतु परमाणु निरवयव होने से आकार रहित है।

(iv) प्र. एक आकाश प्रदेश में अनंत स्कंध कैसे रहते हैं? उ. परमाणु अप्रतिघात परिणाम वाले होने से एक आकाश प्रदेश में अनंत रहते हैं। eg. एक Room में दीपक जल रहा है, वहाँ अन्य दीपक रखो तो सभी दीपक की प्रभा एक Room में अप्रतिघात परिणाम से समा जाती है।

(v) प्र. जो परमाणु में ~~परिणाम~~ प्रतिघात परिणाम नहीं है तो स्कंध की उत्पत्ति कैसे होती है क्योंकि बंध के पहले संयोग और संयोग के पहले प्रतिघात जरूरी है? उ. स्कंध रूप कार्य के अनंत परमाणु संयोग से एक आकाश प्रदेश में रहते हैं तब वे अप्रतिघात परिणाम वाले होते हैं। फिर बंध कार्य का आरंभ करते हुए वे प्रतिघात परिणाम वाले होते हैं।

(vi) प्रतिघात के 3 प्र. -

(a) बंध परिणाम प्रतिघात-बंध परिणाम से होने वाला।
(b) उपकाराभाव प्रतिघात-लोकांत पर धर्म-अधर्म के अभाव से।
(c) वेग प्रतिघात-एक परमाणु सामने आते दूसरे परमाणु से विस्रसा से उत्पन्न गति के वेग से टकराता है।

सू. उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥5-29॥

भा. उत्पाद(i)-व्यय(ii) और ध्रौव्य(iii) से युक्त(iv) सत् का लक्षण है। जो उत्पन्न होता है, जो

DATE / /

नष्ट होता है और जो ध्रुव है, वह सत्। इससे अन्य असत् है।

टी. (i) ध्रौव्य अंश सामान्य है। उत्पाद व्यय विशेष है।

प्र. भाष्यकार ने ध्रौव्य को उत्पाद-व्यय से अलग क्यों रखा? उ. सामान्य प्रधान है, यदि ध्रौव्यांश हो तो ही उत्पाद-व्यय संगत होते हैं। सामान्य की प्रधानता बताने के लिए ऐसा किया। अथवा अन्य प्रकार से-

ध्रौव्य सभी द्रव्यों में स्वतः है किन्तु उत्पाद-व्यय जीव और पुद्गल में स्वतः है, धर्म-अधर्म-आकाश में उपचार से है।

(ii) च शब्द समुच्चयार्थ। तीनों एक-एक अकेले सत् के लक्षण नहीं हैं किंतु साथ में समुदित लक्षण हैं।

(iii) युक्त शब्द के 2 अर्थ- (a) परस्पर सापेक्ष- उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों एक-दूसरे की अपेक्षा वाले हैं।

(b) परस्पर प्रतिबद्ध- तीनों एक साथ ही रहते हैं, कोई अकेला नहीं होता।

(iv) उत्पादादि परस्पर सापेक्ष ही सत् का लक्षण हैं। उनमें द्रव्य नय और पर्याय नय के अभिप्राय →

उत्पाद-व्यय के लिए द्रव्य नय का अभिप्राय- दूसरा आकार प्रगट होना उत्पाद है। जो आकार था, वह बदलकर दूसरा हो गया। यह औपचारिक है क्योंकि परमार्थ से कोई भी वस्तु उत्पन्न नहीं होती, ध्रौव्यांश सतत अवस्थित ही है। इसी प्रकार व्यय भी।

उत्पाद-व्यय के लिए पर्यायनय का अभिप्राय- पूर्वक्षण का उच्छेद हो और नई क्षण पैदा हो, वह उत्पाद। इस उत्पाद पर्याय का निरन्वय उच्छेद विनाश है।

ध्रौव्य के लिए द्रव्यनय का अभिप्राय- अन्वयी सामान्य अंश ध्रौव्य है, वही परमार्थ है।

ध्रौव्य के लिए पर्यायनय का अभिप्राय- यह नय ध्रौव्य शब्द का अर्थ 'एक संतान' करता है। इस संतान के बल से प्रत्यभिज्ञान की सिद्धि करता है।

सू. तद्भावाव्ययं नित्यम् 5-30॥

टी. (i) तद्भावात् अव्ययं तद्भावाव्ययं - सत्पन से नष्ट न होना।

तद्भावेन अव्ययं - सत् रूप स्थित्यंश से नष्ट न हो।

तद्भावस्य अव्ययं- सत् स्वरूप का फेरफार।

(ii) प्र. अलोकाकाश में अवगाहक द्रव्य नहीं है तो अनित्यता कैसे? उ. वहाँ अगुरु-लघु आदि पर्याय से अनित्यता होती है।

★ सर्वार्थसिद्धौ- द्विविध उत्पादः - स्वनिमित्तः परप्रत्ययश्च। स्वनिमित्तस्तावदनन्तानाम-गुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्यादभ्युपगम्यमानानां षट्स्थानपतितया वृद्ध्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च।

→ प्र. उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य एक साथ कैसे घटते हैं-

सू. अर्पितानर्पितसिद्धेः 5-31॥

भा. अर्पितानर्पितसिद्धेः।

टी. (i) अर्पित यानि ग्रहण। अनर्पित यानि अग्रहण। सिद्धि यानि ज्ञान। अर्पित से अनर्पित का ज्ञान होने से (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक साथ घटते हैं)।

(ii) (सूत्र 5-29 की टीका में-) स्थिति, उत्पाद, विनाश ये तीनों ⓐ एककालीन है ⓑ भिन्नकालीन भी है ⓒ तीनों परस्पर अभिन्न हैं ⓓ भिन्न भी हैं। अर्थात् तीनों कथंचित् एककालीन है, कथंचित् अभिन्न है। चारों Point को सिद्ध करते हैं-

ⓐ तीनों एककालीन → उत्पाद और विनाश में द्रव्य तो एक ही है। पूर्व अवस्था का नाश वही उत्तर अवस्था का उत्पाद है, अर्थात् जिस क्षण में विनाश है उसी क्षण उत्पाद है। इस प्रकार उत्पाद व्यय एक कालीन है। इसमें स्वात्मत्वेन अपृथग्भाव कारण है। उत्पाद-विनाश के पहले और बाद में द्रव्य की ~~प्र~~ प्रतीति होती है। उत्पाद-विनाश के काल में भी द्रव्य की प्रतीति होती है। अतः उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक कालीन है।

ⓒ तीनों अभिन्न हैं → पूर्व अवस्था का नाश और उत्तरावस्था की उत्पत्ति परमार्थ से एक ही है अतः ये दोनों तो अभिन्न हैं। तथा उत्पाद-विनाश द्रव्य से भी अभिन्न हैं क्योंकि द्रव्य ही उस-उस रूप से नाश पामता है और उत्पन्न होता है। अतः तीनों परस्पर अभिन्न हैं।

ⓑ भिन्न कालीन → नैगम नय के अभिप्राय से उत्पाद, विनाश और द्रव्य भिन्न कालीन हैं क्योंकि उत्पाद प्रागभाव है और प्रागभाव द्रव्य का धर्म है इससे वह द्रव्य में रहता है।

DATE ___/___/___

विनाश प्रध्वंसाभाव है और वह भी धर्म होने से द्रव्य में रहता है। द्रव्य स्वरूप छोड़े बिना स्वयं में रहता है। इसलिए उत्पन्न होकर कुछ काल रहने पर प्रध्वंस होने से विनाश होता है। इस प्रकार तीनों भिन्नकालीन हैं।

(d) परस्पर भिन्न हैं- पट और आकाश दोनों पृथक् होने से अत्यंत भिन्न कालीन हैं। इसी प्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों स्व-स्व काल में होने से भिन्न हैं। एक नहीं। यदि उत्पाद और नाश एक हो तो जन्म के साथ ही नष्ट हो अतः जन्म जन्म नहीं कहा जा सकता। इससे घटादि कार्य की क्रिया करने में फल का अभाव होगा। इससे वे भिन्न भी हैं और भिन्नकालीन भी हैं।

भा. (i) तीनों (ii) प्रकार का सत् और (iii) नित्य, दोनों ही अर्पित और अनर्पित से सिद्ध होते हैं।

हि.

(i) ज्ञान द्वारा वस्तु सत्त्वासत्त्वविशिष्ट ही ग्रहण की जाती है अर्थात् जब कोई ऐसा वस्तु को 'सत्' रूप ग्रहण करता है, तभी पर द्रव्य-क्षेत्रादि की अपेक्षा उस ही वस्तु को 'असत्' रूप भी ग्रहण करता है। यदि ऐसा न माने तो वह ज्ञान संकीर्ण होने से अनंत धर्मात्मक वस्तु विषयक नहीं बनेगा, जिससे वह ज्ञान प्रमाण नहीं होगा। इसी प्रकार नित्यादि धर्मों में भी जानना।

(ii) प्र. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों मिलकर सत् है, तो भाष्य में उप. का सत् क्यों कहा? उ. वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त कथंचित् भिन्न है, कथंचित् अभिन्न है। अतः यहाँ भिन्न की अपेक्षा से कहा है।

प्र. उत्पादादि प्रत्येक में सत् की प्ररूपणा करते हो। प्रत्येक उत्पादादि तो एक देश, वह देश कैसे सत् होता है? उ. एक देश सत् होता है, तभी समुदाय सत् होता है। इसी प्रकार उत्पादादि भी सत् है।

(iii) प्र. सत् कहने के बाद 'नित्य' का ग्रहण क्यों किया? उ. सत् कहने पर कोई ऐसा समझे की ध्रौव्यांश ही नित्य और उत्पाद-व्यय अनित्य है, किंतु संपूर्ण वस्तु नित्य-अनित्य नहीं है। इस प्रकार नित्यत्व और अनित्यत्व व्यधिकरण हुए। इसके निवारण के लिए भाष्यकार ने नित्य का ग्रहण किया है। आशय यह है कि निरंश समस्त वस्तु की अर्पणा होती है।

वस्तु तो ध्रौव्यांश और उत्पाद-व्यय से अभिन्न है किंतु श्रोता की बुद्धि ग्रहण कर सके इसलिए यह भेद द्रव्यास्तिक और पर्यायास्तिक नय से किया जाता है।

~~आ. अर्पित यानि व्यावहारिक, अनर्पित यानि~~

आ. (i) अर्पित व्यवहार प्रयोजन वाले और अनर्पित व्यवहार प्रयोजन वाले सब विकल्प हैं।
(भाष्य का अन्वय → तीनों प. का सत् और नित्य, दोनों ही अर्पित ~~अ~~ से अनर्पित की सिद्धि होने से अर्पित व्यावहारिक और अनर्पित व्यावहारिक हैं।)

टी. (i) जो साक्षात् शब्द से व्यवहार प्राप्त करे वह अर्पित व्यावहारिक और जो अर्थ से व्यवहार प्राप्त करे वह अनर्पित व्यावहारिक कहा जाता है। eg. 'घट' इस शब्द 'सत्' का व्यवहार अर्पित और असत्त्वादि धर्म गम्यमान हैं, वे अनर्पित।

आ. उसमें सत् ४प्र. का है। वह इस प्रकार-

1. (i) द्रव्यास्तिक - द्रव्य ही सत् है
2. (ii) मातृकापदास्तिक - द्रव्य विशेष ही सत् है } द्रव्य नय
3. (iii) उत्पन्नास्तिक - उत्पाद ही सत् है
4. (iv) पर्यायास्तिक - विनाश ही सत् है } पर्याय नय

टी. (i) अस्ति मतिः अस्य आस्तिकम्। द्रव्ये आस्तिकं द्रव्यास्तिकम् ⇒ द्रव्य में ही मति वाला। एक द्रव्य ही विद्यमान है, पर्याय नहीं है। अभेद ऐसा द्रव्य ही भेद पाता है, पर्याय नहीं क्योंकि उस-उस रूप से द्रव्य का ही भवन है। शक्ति रूप द्रव्य ही सब पर्यायों का निमित्त है। देश-काल के क्रम से जो भेद पर्याय दिखते हैं, वे द्रव्य की एक रस अवस्था है क्योंकि सभी में 'सत्, सत्' ऐसा अनुभव होता है। वह एक सत् ही भेद की बुद्धि से अभिन्न होने पर भी भिन्न लगता है, जैसे तैमिरिक रोगी को एक के 2 चंद्र दिखते हैं।

→ द्रव्यास्तिक २प्र. - (a) शुद्ध - संग्रह नय अनुसार उपरोक्त स्वरूप।
(b) अशुद्ध - नैगम और व्यवहार नय अनुसार।

→ नैगमनय से (क) सामान्य का परिचय - सामान्य 1. सत् है 2. विशेष से अलग है 3. द्रव्य-गुण-कर्म में आश्रित सत्ता है 4. 'सत्' शब्द की प्रवृत्ति का हेतु और 'सत्-सत्' ऐसी प्रतीति का हेतु है।
(ख) विशेष का परिचय - सजातीय और विजातीय में भेद की बुद्धि का हेतु विशेष है।
इस प्रकार नैगम सामान्य-विशेष दोनों को स्वीकारता है, किंतु भिन्न-भिन्न मानता है। जबकि द्रव्यास्तिक मात्र शुद्ध सत्ता को मानता है।

DATE / /

→ व्यवहारनय- यह द्रव्यों के विशेष को मानने वाला है अर्थात् सभी द्रव्यों का कार्य एक नहीं हैं, अलग-अलग है। अतः यह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

→ मात्र 'सत्' को मानने वाला द्रव्यास्तिक नय लोकव्यवहार से बाहर है क्योंकि 'सत्' से कोई प्रवृत्ति या निवृत्ति नहीं होती, जगत् न निरीह होता है, अनुभव का बाध होता है।

(ii) मातृकापदास्तिक- मातृका यानि स्वर और व्यंजन। यह मातृका सभी वर्ण, पद, वाक्य, प्रकरणादि का उत्पत्तिस्थान है। यह व्यवहार नय का मत है।
धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव से अन्य कोई द्रव्य नहीं है। सभी द्रव्य नित्य हैं, परस्पर स्वतंत्र, भिन्न है, कभी स्वभाव छोड़ते नहीं हैं। इनसे ही लोक व्यवहार चलता है।

(iii) उत्पन्नास्तिक- उत्पाद रूप पर्याय को मानने वाला यह पर्याय नय है। यह मात्र वर्तमान क्षण को मानने वाले ऋजुसूत्र नय का अभिप्राय है। अनुत्पन्न वस्तु है ही नहीं, जो उत्पन्न क्षण है वही सत् है। यदि अनुत्पन्न को स्वीकारेंगे तो खकुसुम और वंध्यापुत्र को भी सत् मानने की आपत्ति आएगी। प्रत्येक वस्तु प्रत्येक क्षण उत्पन्न हो रही है इसलिए कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है।
प्र. 'घट' उत्पन्न होने के बाद नाश तक 'घट' शब्द का व्यवहार कैसे होता है? उ. संतति के आश्रय से।

(iv) पर्यायास्तिक - विनाश रूप पर्याय को मानने वाला। उत्पन्न वस्तु अवश्य नष्ट होती है, इससे जितने उत्पाद हैं, उतने ही नाश हैं।

भा. इनके अर्थपद → (i) द्रव्यास्तिक के द्रव्यं सत् है, (ii) द्रव्ये या बहुत द्रव्य सत् है। (iii) (iv) असत् नहीं ही है।

हे.
(i) अर्थपद यानि अभिधेय-वाच्य।

(ii) द्रव्यं सत्- यह शुद्ध द्रव्यास्तिक अर्थात् संग्रह नय का अभिप्राय है। वह गुण, कर्म वि. सभी को द्रव्य में ही ~~समाहित~~ समावेश करता है।

(iii) ये अशुद्ध द्रव्यास्तिक अर्थात् नैगम और व्यवहार नय के अभिप्राय हैं। द्रव्य को व्यवहार में लाने के लिए द्रव्य विशेष स्वीकारते हैं।

(iv) असन्नाम यानि 'असत्' संज्ञा। 'असत्' संज्ञा वाला कोई असत् पदार्थ न होने से 'असत्' संज्ञा है ही नहीं। अथवा → 'असत्' पदार्थ है ही नहीं।

भा. मातृकापदास्तिक के भी (i) एक मातृकापद, दो मातृकापद या बहुत मातृकापद सत् है। (ii) अमातृकापद, दो अमातृकापद या बहुत मातृकापद असत् हैं।

टी. (i) व्यवहार नय अनुसार द्रव्य विशेष सत् हैं। स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव से वे 5 द्रव्य सत् हैं।
(ii) पर द्रव्यादि की अपेक्षा से असत् हैं।

भा. उत्पन्नास्तिक के उत्पन्न, (i) दो उत्पन्न या बहुत उत्पन्न सत् हैं। अनुत्पन्न, दो अनुत्पन्न या बहुत अनुत्पन्न असत् है।

टी. (i) वर्तमान क्षण बहुत है। जब एक क्षण की विवक्षा करें तब एकव., बहुत की विवक्षा करें तब बहुव.।

→ सप्तभंगी - (i) स्याद् सत् - द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता, पर्यायार्थिक गौण।
(ii) स्यात् असत् - पर्यायार्थिक नय प्रधान।
(iii) ~~युगपत्~~ स्यात् अवक्तव्य।
ये तीन सकलादेश विकल्प हैं। शेष चार विकलादेश हैं।

भा. युगपत् (i) अर्पित करे तो सत् या असत् अवक्तव्य होगा। (ii)

टी. (i) द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय की एक साथ विवक्षा करें तो सप्तभंगी का तीसरा विकल्प 'स्यात् अवक्तव्य' बनता है।
(ii) अनुपनीत यानि अविवक्षित।

भा. पर्यायास्तिक के सद्भाव (i) पर्याय में एक, दो या बहुत द्रव्य सत् हैं। दो सद्भाव पर्याय में एक, दो या बहुत द्रव्य सत् है। बहुत सद्भाव पर्याय में एक, दो या बहुत द्रव्य सत् हैं। (पहला भंग बताया)

टी. (i) eg. गत्युपकार रूप एक पर्याय में आदिष्ट ~~और~~ धर्म द्रव्य सत्। इसी प्रकार समझना।

भा. एक असद्भाव पर्याय में, दो ~~अ~~ असद्भाव पर्याय में या बहुत असद्भाव पर्याय में आदिष्ट ऐसा एक द्रव्य, दो द्रव्य या बहुत द्रव्य सत् हैं। (दूसरा भंग बताया)

भा. दोनों पर्याय में, दो उभयपर्याय में या बहुत उभय पर्याय में आदिष्ट एक द्रव्य, दो या बहुत द्रव्य सत् या ~~e~~ असत् अवक्तव्य।
देश (i) में आदेश द्वारा (पर्यायास्तिक की) व्याख्या करना चाहिए।

टी. (i) विकलादेश में।

इति श्रीतत्त्वार्थाधिगमाख्यं स्वोपज्ञभाष्यं टीकया सह समाप्तम्।